भारतीय लोकतंत्र में संघवादः केंद्र–राज्य संबंधों और चुनौतियों का विश्लेषण

वजीता
शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान एवं लोक प्रशासन विभाग,
बाबा मस्तानाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक।

सारांश

भारत एक विशाल और विविधताओं से भरा हुआ देश है, जहाँ अनेक भाषाएँ, धर्म, संस्कृति, जातियाँ और क्षेत्र हैं। इतनी विविधता को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए एक ऐसी शासन व्यवस्था की आवश्यकता थी, जो न केवल सभी को प्रतिनिधित्व प्रदान करे, बल्कि देश की अखंडता और एकता को भी बनाए रखे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत में संघात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया। संघवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें शासन की शक्तियाँ केंद्र और राज्य सरकारों के बीच विभाजित होती हैं ताकि दोनों स्तरों पर शासन सुचारू रूप से चल सके और जनता की जरूरतों के अनुसार निर्णय लिए जा सकें। भारतीय संविधान निर्माताओं ने यह समझा कि भारत जैसे विशाल देश के लिए पूर्णतः केंद्रीकृत शासन प्रणाली उपयुक्त नहीं होगी। इसके साथ ही, उन्होंने यह भी महसूस किया कि बहुत अधिक विकेंद्रीकरण से भी राष्ट्रीय एकता को खतरा हो सकता है। अतः उन्होंने एक ऐसा संघीय ढांचा तैयार किया जिसमें केंद्र को कुछ अधिक अधिकार प्रदान किए गए ताकि आपातकालीन परिस्थितियों में राष्ट्र की एकता और अखंडता को बनाए रखा जा सके। यही कारण है कि भारत का संघवाद एकात्म प्रवृत्ति वाला है, जहाँ केंद्र और राज्य दोनों को संविधान के द्वारा प्रदत्त शक्तियाँ प्राप्त हैं, लेकिन केंद्र को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया गया है। भारत में संघीय व्यवस्था इसलिए भी आवश्यक थी क्योंकि विभिन्न राज्यों की भौगोलिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न हैं। इन विविधताओं को ध्यान में रखते हुए, राज्यों को उनके क्षेत्रों के अनुसार निर्णय लेने का अधिकार देना एक व्यवहारिक और न्यायसंगत कदम था। यह व्यवस्था न केवल प्रशासनिक कुशलता को बढ़ावा देती है, बल्कि लोकतांत्रिक सिद्धांतों की रक्षा भी करती है। वर्तमान समय में जब देश सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है, तब केंद्र और राज्य सरकारों के बीच संबंधों की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ गई है। चाहे वह नीति निर्माण की बात हो, संसाधनों के वितरण की समस्या हो या फिर किसी राज्य विशेष की मांगेंकृइन सभी मुद्दों पर केंद्र और राज्य सरकारों के बीच संतुलन बनाए रखना अत्यंत आवश्यक हो गया है। यदि यह संतुलन बिगड़ता है, तो न केवल राज्यों की स्वायत्तता पर प्रश्न उठते हैं, बल्कि लोकतंत्र की नींव भी कमजोर होती है। इसलिए वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह विषय अत्यंत प्रासंगिक हो गया है कि भारतीय संघवाद की प्रकृति को समझा जाए, केंद्र और राज्य सरकारों के बीच संबंधों का विश्लेषण किया जाए और यह जाना जाए कि किन कारणों से इन संबंधों में कभी–कभी तनाव उत्पन्न होता है। इसके साथ ही, यह भी विचार करना आवश्यक है कि इन चुनौतियों से निपटने के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं ताकि भारत का लोकतंत्र और अधिक मजबूत और समावेशी बन सके।

भूमिका:

भारत एक विशाल और विविधताओं से भरा हुआ देश है, जहाँ अनेक भाषाएँ, धर्म, संस्कृति, जातियाँ और क्षेत्र हैं। इतनी विविधता को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए एक ऐसी शासन व्यवस्था की आवश्यकता थी, जो न केवल सभी को प्रतिनिधित्व प्रदान करे, बल्कि देश की अखंडता और एकता को भी बनाए रखे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत में संघात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया। संघवाद एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें शासन की शक्तियाँ केंद्र और राज्य सरकारों के बीच विभाजित होती हैं ताकि दोनों स्तरों पर शासन सुचारू रूप से चल सके और जनता की जरूरतों के अनुसार निर्णय लिए जा सकें। भारतीय संविधान निर्माताओं ने यह समझा कि भारत जैसे विशाल देश के लिए पूर्णतः केंद्रीकृत शासन प्रणाली उपयुक्त नहीं होगी। इसके साथ ही, उन्होंने यह भी महसूस किया कि बहुत अधिक विकेंद्रीकरण से भी राष्ट्रीय एकता को खतरा हो सकता है। अतः उन्होंने एक ऐसा संघीय ढांचा तैयार किया जिसमें केंद्र को कुछ अधिक अधिकार प्रदान किए गए ताकि आपातकालीन परिस्थितियों में राष्ट्र की एकता और अखंडता को बनाए रखा जा सके। यही कारण है कि भारत का संघवाद एकात्म प्रवृत्ति वाला है, जहाँ केंद्र और राज्य दोनों को संविधान के द्वारा प्रदत्त शक्तियाँ प्राप्त हैं, लेकिन केंद्र को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया गया है। भारत में संघीय व्यवस्था इसलिए भी आवश्यक थी क्योंकि विभिन्न राज्यों की भौगोलिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न हैं। इन विविधताओं को ध्यान में रखते हुए, राज्यों को उनके क्षेत्रों के अनुसार निर्णय लेने का अधिकार देना एक व्यवहारिक और न्यायसंगत कदम था। यह व्यवस्था न केवल प्रशासनिक कुशलता को बढ़ावा देती है, बल्कि लोकतांत्रिक सिद्धांतों की रक्षा भी करती है। वर्तमान समय में जब देश सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है, तब केंद्र और राज्य सरकारों के बीच संबंधों की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ गई है। चाहे वह नीति निर्माण की बात हो, संसाधनों के वितरण की समस्या हो या फिर किसी राज्य विशेष की मांगेंकृइन सभी मुद्दों पर केंद्र और राज्य सरकारों के बीच संतुलन बनाए रखना अत्यंत आवश्यक हो गया है। यदि यह संतुलन बिगड़ता है, तो न केवल राज्यों की स्वायत्तता पर प्रश्न उठते हैं, बल्कि लोकतंत्र की नींव भी कमजोर होती है। इसलिए वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह विषय अत्यंत प्रासंगिक हो गया है कि भारतीय संघवाद की प्रकृति को समझा जाए, केंद्र और राज्य सरकारों के बीच संबंधों का विश्लेषण किया जाए और यह जाना जाए कि किन कारणों से इन संबंधों में कभी–कभी तनाव उत्पन्न होता है। इसके साथ ही, यह भी विचार करना आवश्यक है कि इन चुनौतियों से निपटने के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं ताकि भारत का लोकतंत्र और अधिक मजबूत और समावेशी बन सके।

भारतीय संघवाद की विशेषताएँ:

भारत का संविधान एक विस्तृत और व्यापक दस्तावेज़ है, जिसमें शासन व्यवस्था से संबंधित सभी पहलुओं को विस्तार से स्पष्ट किया गया है। इसमें संघात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है, जिसमें शासन की शक्तियाँ केंद्र और राज्यों के बीच बाँटी गई हैं। भारत का संघवाद विशेष प्रकार का है, जो न केवल विविधताओं से भरे देश को एकता के सूत्र में बाँधता है, बल्कि शासन को प्रभावी, उत्तरदायी और लोकहितकारी भी बनाता है। भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची में शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया है। इसमें तीन प्रकार की सूचियाँ हैं – संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची। संघ सूची में वे विषय आते हैं जिन पर केवल केंद्र सरकार को कानून बनाने का अधिकार है, जैसे – रक्षा, विदेश नीति, मुद्रा आदि। राज्य सूची में वे विषय शामिल हैं जिन पर राज्य सरकारें अपने–अपने क्षेत्रों में कानून बना सकती हैं, जैसे– पुलिस, स्वास्थ्य, भूमि, कृषि आदि। समवर्ती सूची में वे विषय रखे गए हैं जिन पर दोनों स्तर की सरकारें कानून बना सकती हैं, जैसे – शिक्षा, जंगल, विवाह, अनुबंध आदि। यदि किसी विषय पर केंद्र और राज्य द्वारा बनाए गए कानूनों में विरोध हो, तो केंद्र का कानून मान्य होता है। भारतीय संघवाद की एक विशेषता यह है कि इसमें एकात्मक झुकाव है। इसका अर्थ यह है कि आपातकाल की स्थिति में

केंद्र सरकार को विशेष अधिकार मिल जाते हैं, जिससे वह राज्य सरकारों पर नियंत्रण स्थापित कर सकती है। इसके अतिरिक्त, राज्यपाल की नियुक्ति केंद्र सरकार द्वारा की जाती है, और वह केंद्र के प्रति उत्तरदायी होता है। यह स्थिति राज्यों की स्वतंत्रता को सीमित करती है, परंतु राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए इसे आवश्यक समझा गया है। भारत में शासन की संरचना केवल केंद्र और राज्यों तक सीमित नहीं है। संविधान के ७३वें और ७४वें संशोधन के माध्यम से पंचायती राज संस्थाएँ और नगर निकायों को संवैधानिक दर्जा दिया गया है। इससे भारत में शासन की एक तीसरी परत का निर्माण हुआ है जिसे स्थानीय शासन कहा जाता है। यह तीन स्तरीय शासन व्यवस्था भारत के संघवाद को और अधिक विकेंद्रित, भागीदारी आधारित और जनसमर्थ बनाती है। भारतीय संघवाद की यह संरचना देश की भौगोलिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विविधताओं को ध्यान में रखते हुए तैयार की गई है। यह एक ऐसा संतुलन प्रस्तुत करती है जिसमें केंद्र को आवश्यक शक्ति दी गई है ताकि वह पूरे राष्ट्र के हित में निर्णय ले सके, और राज्यों को पर्याप्त अधिकार दिए गए हैं ताकि वे अपनी क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुसार कार्य कर सकें। इसी संतुलन के कारण भारत का संघवाद न केवल एक अद्वितीय उदाहरण बन गया है, बल्कि लोकतंत्र की सफलता में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

वर्तमान केंद्र–राज्य संबंधों की व्यावहारिक स्थितिः

भारतीय लोकतंत्र में संघवाद एक ऐसा तंत्र है, जो विविधताओं से भरे इस देश को एकसूत्र में बाँधने का प्रयास करता है। संविधान ने केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया है, किंतु व्यवहार में यह विभाजन हमेशा स्पष्ट और संतुलित नहीं रहता। समय के साथ–साथ केंद्र और राज्यों के संबंधों में कई प्रकार के सहयोग, मतभेद और टकराव देखने को मिलते हैं, जिससे संघवाद की व्यावहारिक स्थिति का मूल्यांकन करना आवश्यक हो जाता है। वर्तमान समय में केंद्र और राज्यों के बीच कुछ क्षेत्रों में नीतिगत और प्रशासनिक सहयोग की अच्छी मिसालें देखने को मिलती हैं। वस्तु एवं सेवा कर परिषद एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, जिसमें केंद्र और सभी राज्यों के प्रतिनिधि मिलकर आर्थिक नीति से जुड़े निर्णय लेते हैं। यह परिषद केंद्र और राज्यों के बीच सहयोग की भावना को दर्शाती है, जहाँ सबकी भागीदारी से निर्णय लिए जाते हैं। इसी प्रकार नीति निर्माण के क्षेत्र में नीति आयोग राज्यों की भागीदारी को सुनिश्चित करने का एक मंच प्रदान करता है। यह आयोग राज्यों को योजनाओं में हिस्सेदारी देता है, जिससे राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में एकजुट प्रयास संभव होता है। हालाँकि, सहयोग की इन मिसालों के साथ–साथ कई मुद्दों पर केंद्र और राज्यों के बीच असहमति और टकराव की स्थिति भी बनी रहती है। हाल के वर्षों में कृषि सुधार से संबंधित कानूनों को लेकर राज्यों की तीव्र प्रतिक्रिया सामने आई। कई राज्यों ने इन कानूनों को अपने अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण माना और विरोध दर्ज कराया। इसी प्रकार राज्यपाल की भूमिका भी टकराव का एक बड़ा कारण बनती जा रही है। राज्यपालों के माध्यम से केंद्र का अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप कई राज्यों में राजनीतिक असंतोष उत्पन्न करता है। इसके अलावा, कुछ केंद्रीय जांच एजेंसियों के दुरुपयोग के आरोप भी राज्यों द्वारा लगाए गए हैं, विशेषकर विपक्षी दलों द्वारा शासित राज्यों में। इससे यह धारणा बनती है कि संघवाद की भावना को राजनीतिक स्वार्थों की बलि चढ़ाया जा रहा है। इन परिस्थितियों के बीच यह बहस भी चल रही है कि भारत में सहयोगी संघवाद की भावना सशक्त हो रही है या प्रतिस्पर्धी संघवाद का वर्चस्व बढ़ रहा है। सहयोगी संघवाद वह व्यवस्था है जिसमें केंद्र और राज्य परस्पर सहयोग, समन्वय और विश्वास के साथ कार्य करते हैं। वहीं, प्रतिस्पर्धी संघवाद में राज्य आपस में एक–दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हुए बेहतर प्रदर्शन की ओर अग्रसर होते हैं। यद्यपि प्रतिस्पर्धा विकास की दृष्टि से लाभकारी हो सकती है, परंतु जब यह सहयोग की भावना को दबाने लगे, तो संघीय ढांचे की मूल आत्मा पर संकट उत्पन्न हो सकता है। वर्तमान केंद्र–राज्य संबंधों की यह जटिल स्थिति यह संकेत देती है कि संविधान में प्रदत्त संघीय ढांचे को व्यवहार में ईमानदारी से अपनाना होगा। केंद्र और राज्यों दोनों को एक–दूसरे की भूमिका का

सम्मान करते हुए, संवाद और सहयोग के माध्यम से कार्य करना चाहिए ताकि भारत का संघवाद न केवल संवैधानिक सिद्धांत बना रहे, बल्कि व्यावहारिक रूप से भी सशक्त और प्रभावी हो।

अध्ययन के उद्देश्यः

1.भारतीय संघवाद की संरचना और केंद्र–राज्य संबंधों की कार्यप्रणाली का विश्लेषण करना।

2.संघीय व्यवस्था में उत्पन्न होने वाली प्रमुख चुनौतियों और उनके संभावित समाधानों की पहचान करना।

साहित्यिक सर्वेक्षणः

धर्मराज शर्मा (2016), "भारतीय संघ व्यवस्थाः केंद्र-राज्य सम्बन्ध", प्रस्तुत पुस्तक संघीय ढांचे एवं केंद्र-राज्य सम्बन्धों पर एक समेकित और सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करती है। पुस्तक में भारतीय संघ व्यवस्था की आधारभूत संरचना, केंद्र व राज्य के बीच शक्तियों का विभाजन, नदी-जल विवादों सहित अन्य संवेदनशील क्षेत्रों में संबंधों की जटिलताएँ विस्तार से समझाई गई हैं। इसकी भाषा सरल और स्पष्ट है, जिससे राजनीतिक विज्ञान का कोई अध्ययनकर्ता सहजता से सामग्री को समझ सकता है। विशेष रूप से पुस्तक में "केंद्र-राज्य सम्बन्धों में सुधार हेतु सुझाव" भाग उपयोगी है, क्योंकि यह मात्र विश्लेषण तक सीमित नहीं, बल्कि व्यवहारिक समाधान भी प्रस्तावित करती है। कुल मिलाकर यह पुस्तक उन पाठकों के लिए उपयुक्त है जो भारतीय संघवाद की गहराई में जाना चाहते हैं और इसे प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी में भी सहायक पाते हैं।

रमेश चावला (2017), "भीमराव अम्बेडकर और भारतीय लोकतंत्र", यह पुस्तक भीमराव अंबेडकर के लोकतंत्र-विचारों और उनके योगदान को व्यापक रूप से प्रस्तुत करती है। पुस्तक में अम्बेडकर की मूलभूत विचारधारा, सामाजिक न्याय-सुधार के उनके प्रयास, दलित-उत्थान तथा भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में उनका महत्व सरल तथा सुस्पष्ट भाषा में उकेरा गया है। शोध-दृष्टि से यह काम उत्कृष्ट है क्योंकि किन विषयों पर अंबेडकर ने गहरा प्रभाव डाला कृ जैसे संविधान निर्माण, आर्थिक नीति, सामाजिक समानता — उन सभी की विवेचना मिलती है। हालांकि कुछ हिस्सों में उदाहरणों की कमी महसूस होती है, फिर भी यह पुस्तक उन विद्यार्थियों और शोधार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी साधन है जो भारतीय राजनीति और सामाजिक न्याय की गहराई में जाना चाहते हैं।

रश्मि शर्मा (2020),"भारत में संघवाद", रश्मि शर्मा द्वारा प्रकाशित, हिंदी माध्यम के छात्रों के लिए संघवाद तथा केंद्र-राज्य संबंधों को सरल एवं सम्यक् रूप से प्रस्तुत करती है। पाठ्यक्रम-अनुकूल भाषा में रचित यह पुस्तक भारतीय संघीय व्यवस्था के इतिहास, संवैधानिक ढाँचे और व्यवहारिक चुनौतियों को सहज और संक्षिप्त तरीके से उजागर करती है। उदाहरण और अभ्यास-प्रश्नों सहित यह विशेष रूप से विश्वविद्यालयों में सामाजिक एवं राजनीतिक विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है। हालांकि गहराई से अध्ययन करने वालों को इससे अधिक विस्तार-वाले स्रोत भी देखना पड़ेंगे, परंतु प्रारंभिक अध्ययन और परीक्षा-तैयारी के दृष्टि से यह पुस्तक एक भरोसेमंद सहायक सिद्ध होती है।

यतीन्द्रसिंह सिसोदिया, "उदय सिंह राजपूत एवं पुष्पेन्द्र कुमार मिश्र (2025)", समकालीन भारतीय संघवादः चुनौतियाँ, अवसर एवं संभावनाएँ", प्रस्तुत पुस्तक भारतीय संघवाद की वर्तमान चुनौतियों, अवसरों और संभावनाओं का समेकित विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इसमें संघवाद के दर्शन-तत्व, केन्द्र-राज्य संबंध तथा वित्तीय संघवाद जैसे विविध विषयों पर शोध–लेखों का संग्रह है। पुस्तक का भाषा सरल है और शैक्षिक दृष्टि से उपयोगी है, जिससे राजनीतिक विज्ञान व सार्वजनिक प्रशासन के विद्यार्थी इसे सहजता से समझ सकते हैं। कुछ अध्यायों में गहराई या उदाहरण-उद्धरण का अभाव महसूस होने के बावजूद यह पुस्तक संघवाद संबंधी विमर्श को ताज़ा दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती है। नीति-निर्माताओं, शोधार्थियों व राज्य-संबंधित समीक्षकों के लिए इसे एक महत्वपूर्ण संदर्भ माना जा सकता है।

संघवाद के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँः

भारतीय संविधान ने देश को एक "संघात्मक व्यवस्था" प्रदान की है, जिसमें केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का बंटवारा किया गया है। यह व्यवस्था देश की क्षेत्रीय, भाषाई, सांस्कृतिक तथा सामाजिक विविधताओं को ध्यान में रखते हुए बनाई गई थी। हालांकि, व्यवहार में संघवाद को कई प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जो इसकी मूल भावना को प्रभावित करती हैं। सबसे पहली और प्रमुख चुनौती है — राजनीतिक विभिन्नता और दलगत राजनीति। भारत में केंद्र और राज्यों में अक्सर अलग–अलग राजनीतिक दल सत्ता में होते हैं। यह विविधता लोकतंत्र के लिए एक सकारात्मक संकेत हो सकती है, लेकिन कई बार यह दलगत राजनीति के टकराव का रूप ले लेती है। जब केंद्र और राज्य सरकारों के बीच राजनीतिक मतभेद होते हैं, तो इसका असर प्रशासनिक सहयोग पर पड़ता है। राज्यों को केंद्रीय योजनाओं या सहायता से वंचित करने की घटनाएँ सामने आई हैं। इसके अलावा, राज्यपाल जैसी संवैधानिक संस्थाओं का दलीय हितों के लिए प्रयोग भी इस समस्या को और गहरा करता है। दूसरी चुनौती है कृ संसाधनों का असमान वितरण और वित्तीय आत्मनिर्भरता की कमी। संविधान के अनुसार, करों और राजस्व का बड़ा हिस्सा केंद्र के पास रहता है, जबकि राज्यों को अपेक्षाकृत कम साधन मिलते हैं। इससे राज्यों को अपनी योजनाओं और विकास कार्यों के लिए लगातार केंद्र पर निर्भर रहना पड़ता है। कई बार केंद्र राज्यों को अनुदान या सहायता राशि अपनी शर्तों पर देता है, जिससे राज्यों की नीतिगत स्वायत्तता प्रभावित होती है। इसके अलावा, कुछ विकसित राज्य अधिक राजस्व अर्जित करते हैं, जबकि पिछड़े राज्य संसाधनों की कमी से जूझते हैं, जिससे आर्थिक असमानता और बढ़ जाती है। एक और गंभीर चुनौती है कृ राज्यों की स्वायत्तता बनाम राष्ट्रीय एकता का प्रश्न। भारत जैसे बहुलतावादी देश में यह आवश्यक है कि केंद्र एकीकृत दृष्टिकोण रखे, लेकिन यह भी उतना ही जरूरी है कि राज्यों को उनकी सांस्कृतिक, भाषाई और प्रशासनिक पहचान के अनुरूप कार्य करने की स्वतंत्रता मिले। कई बार केंद्र द्वारा राज्यों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने की घटनाएँ सामने आती हैं, जिससे टकराव उत्पन्न होता है। उदाहरणस्वरूप, भाषा नीति, शिक्षा पाठ्यक्रम या कानून व्यवस्था जैसे मामलों में केंद्र का अत्यधिक हस्तक्षेप, राज्यों में असंतोष पैदा करता है। अंत में, आपातकालीन प्रावधानों, विशेष रूप से अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग भी संघवाद की भावना के लिए एक गंभीर चुनौती है। इस अनुच्छेद के माध्यम से केंद्र को यह शक्ति मिलती है कि वह किसी राज्य की सरकार को बर्खास्त कर सकता है, यदि वह संविधान के अनुसार कार्य नहीं कर रही हो। किंतु अतीत में कई बार इस प्रावधान का राजनीतिक लाभ हेतु दुरुपयोग हुआ है। राज्यों की सरकारों को अल्पमत या विरोधी विचारधारा के आधार पर हटाया गया, जो संघीय ढांचे को कमजोर करने वाला कदम रहा है। इन सभी चुनौतियों के बीच यह आवश्यक है कि भारतीय संघवाद को केवल एक संवैधानिक व्यवस्था न मानकर, उसे एक जीवंत लोकतांत्रिक प्रक्रिया के रूप में देखा जाए। इसके लिए केंद्र और राज्यों के बीच विश्वास, संवाद, और संवैधानिक मर्यादाओं का पालन अत्यंत आवश्यक है, तभी संघवाद की भावना सशक्त और स्थायी बन सकेगी।

निष्कर्ष और समाधान के सुझाव

भारतीय लोकतंत्र का आधारभूत स्तंभ संघवाद है, जो केंद्र और राज्यों के बीच सत्ता और उत्तरदायित्वों के संतुलित बंटवारे पर आधारित है। यह व्यवस्था भारत जैसी विविधताओं से भरी बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी राष्ट्र के लिए अत्यंत उपयुक्त है। किंतु समय–समय पर केंद्र–राज्य संबंधों में उत्पन्न असंतुलन, टकराव, वित्तीय असमानता और राजनीतिक हस्तक्षेप जैसे मुद्दों ने इस संघीय ढांचे को कमजोर करने की कोशिश की है। अतः यह आवश्यक है कि हम संघवाद की मूल भावना को पुनः सशक्त करें और उसे व्यवहार में उतारने के लिए ठोस उपाय करें। सबसे पहले और सबसे आवश्यक समाधान है — केंद्र और राज्यों के

बीच संवाद और विश्वास का पुनर्निर्माण। कई बार नीतिगत फैसले या प्रशासनिक योजनाएँ एकतरफा ढंग से बनाई जाती हैं, जिससे राज्यों को यह महसूस होता है कि उनकी राय की उपेक्षा हो रही है। इससे आपसी अविश्वास और टकराव की स्थिति बनती है। यदि केंद्र और राज्य सरकारें नियमित संवाद, सहयोग और विचार–विमर्श की परंपरा को मजबूत करें, तो यह संबंधों में पारदर्शिता और विश्वास को जन्म देगा। सभी स्तरों पर परस्पर सम्मान और समानता का व्यवहार ही इस दिशा में सबसे बड़ी कुंजी है। दूसरा आवश्यक कदम है — वित्तीय आयोग और अंतरराज्यीय परिषद जैसी संस्थाओं को अधिक प्रभावी और सशक्त बनाना। वित्तीय आयोग का दायित्व है कि वह केंद्र और राज्यों के बीच राजस्व के वितरण को न्यायसंगत बनाए, ताकि राज्यों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। किंतु अक्सर राज्यों को यह शिकायत रहती है कि उन्हें पर्याप्त संसाधन नहीं मिलते या अनुदान राजनीतिक पक्षपात के आधार पर दिया जाता है। इसी तरह, अंतरराज्यीय परिषद एक ऐसा मंच है, जहाँ केंद्र और राज्य मिलकर आपसी मुद्दों पर चर्चा कर सकते हैं। दुर्भाग्यवश, यह मंच अक्सर निष्क्रिय रहता है। यदि इसे नियमित बैठकें और निर्णयात्मक शक्तियाँ दी जाएँ, तो यह अनेक समस्याओं का समाधान बन सकता है। तीसरा समाधान न्यायपालिका की निष्पक्ष मध्यस्थता में निहित है। जब केंद्र और राज्यों के बीच संवैधानिक या कानूनी विवाद उत्पन्न होते हैं, तो न्यायपालिका ही अंतिम निर्णायक होती है। इस भूमिका में न्यायपालिका को पूरी तरह निष्पक्ष, स्वतंत्र और तटस्थ रहना चाहिए। न्यायालयों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि किसी भी पक्ष की स्वायत्तता और अधिकारों का उल्लंघन न हो। विशेषकर, संवैधानिक अनुच्छेदों की व्याख्या करते समय न्यायपालिका को संघीय संतुलन की रक्षा करनी चाहिए। अंततः, दीर्घकालीन समाधान के लिए कुछ संवैधानिक सुधार और व्यवहारिक सहमति की आवश्यकता है। संविधान में ऐसे प्रावधानों की समीक्षा होनी चाहिए, जिनका राजनीतिक दुरुपयोग संभव है, जैसे अनुच्छेद 356 का प्रयोग। इसके साथ ही, व्यवहारिक रूप से सभी दलों को यह समझने की आवश्यकता है कि संघवाद केवल सत्ता बाँटने का तंत्र नहीं, बल्कि यह देश को एकजुट रखने की आधारशिला है। जब केंद्र और राज्य दोनों यह समझेंगे कि वे एक–दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि पूरक हैं, तभी संघवाद की आत्मा जीवित रह सकेगी। इस प्रकार, यदि उपर्युक्त उपायों को ईमानदारी और समर्पण के साथ अपनाया जाए, तो भारत का संघवाद न केवल संवैधानिक आदर्श बना रहेगा, बल्कि एक सफल और सशक्त लोकतांत्रिक व्यवस्था के रूप में पूरी दुनिया के लिए उदाहरण भी बन सकता ळें

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

कुमार, अशुतोष और रवि रंजन। भारतीय सरकार और राजनीति, खंड–4। नई दिल्लीः के.के. पब्लिशर्स, 2009।

कुमार, प्रदीप। भारतीय संघवाद में अध्ययन। नई दिल्लीः डीप एंड डीप पब्लिकेशन्स, 1988।

महेश्वरी, एस.आर. भारत में राज्य सरकार। दिल्लीः मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, 1979

कश्यप, सुभाष सी,"भारतीय संविधानः संघर्ष और विवाद", नई दिल्लीः वितस्ता पब्लिशिंग प्रा. लि, 2010।

कुमार, चंचल,"भारत में संघवादः एक आलोचनात्मक मूल्यांकन", जर्नल ऑफ बिजनेस मैनेजमेंट एंड सोशल साइंसेज रिसर्च (JBM–SSR), 2014; खंड 3रू अंक 9।

सिंह, अजय कुमार, "भारतीय संघवाद का संघीय मॉडलः एक परीक्षण", योजना पत्रिका, फरवरी 2015।

शर्मा धनराज, "भारतीय संघ व्यवस्था", 2016

शर्मा रश्मि, "भारत में संघवाद", एस बीपीडी प्रकाशन,2020।

चावला रमेश,"भीमराव अंबेडकर और लोकतंत्र", 2017।

सिसोदिया यतीन्द्रसिंह, राजपूत उदय एवं कुमार मिश्र,"समकालीन भारतीय संघवाद
चुनौतियाँ, अवसर एवं संभावनाएँ", 2025।